UGC APPROVED JOURNAL - 47746
© INNOVATIVE RESEARCH THOUGHTS | Refereed | Peer Reviewed | Indexed
ISSN : 2454 – 308X | Volume : 04 , Issue : 04 | January – March 2018

रूपक के दस रूप : एक विवेचना

NEELAM RANI,

JBT ,I.D. No. 1017777, neelamfarmana91@gmail.com

सार : अभिनेय काव्य को रूप अथवा रूपक कहते हैं। "रूप्यते नाट्यते इति रूपम्; रूपामेव रूपकम्" - इस व्युत्पत्ति के अनुसार दृश्य काव्यों की सामान्य संज्ञा "रूप" या "रूपक" है। रूपक दो प्रकार के होते हैं : 1. प्रकृति, और 2. विकृति। सर्वलक्षण से सर्वांग से परिपुष्ट दृश्य को प्रकृतिरूपक कहा गया है जैसे नाटक; और प्रकृतिरूपक के ढाँचे में ढले हुए परन्तु अपनी अपनी कुछ विशेषता लिए हुए दृश्य काव्य विकृतिरूपक कहे गए हैं। सामान्य नियम है- "प्रकृतिवद् विकृतिः कर्त्तव्या"।

उभय प्रकार के रूपकों में भरत द्वारा सविशेष महत्त्व के दस रूप माने गए हैं जो दशरूप के नाम से संस्कृत नाट्यपरम्परा में प्रसिद्ध हैं। उनकी पगिणना करते हुए भरतमुनि ने कहा है-

नाटकं सप्रकरणमंको व्यायोग एव च।

भाण: समवकारश्च वीथी प्रहसनं डिम:॥ (ना.शा. 18-2)

ईहामृगश्च विज्ञेयो दशमो नाट्यलक्षणे।

एतेषां लक्षणमहं व्याख्यास्याम्यनुपूर्वशः ॥ (ना.शा. 18-3)

परिचय : रूपक के दस रूप हैं। इन दस रूपों में कुछ विस्तृत रूप हैं और कुछ लघुकाय। इनके कलेवर का आयाम एक अंक की सीमा से लगाकर दस अंक तक का हो सकता है। इनमें मुख्य रस शृंगार या वीर रस होता है। इनकी कथावस्तु पाँच संधियों में विभक्त हाती है। पूर्ण रूप से परिपुष्ट रूपों में पाँचों संधियाँ पाई जाती हैं; अन्य लघुकाय रूपों में अपने अपने आयाम के मात्रानुसार बीच की संधियाँ छाँट दी जाती हैं। प्रत्येक रूप की कथावस्तु आधिकारिक एव प्रासंगिक रूप से विभाजित होती है। प्रधान पुरुष को नायक कहते हैं, जिसका मुख्य लक्ष्य रूप का कार्य समझा जाता है। कार्य की पाँच अवस्थाएँ होती हैं। आरम्भ, यत्न, प्राप्त्याशा, नियताप्ति और फलागम। कार्य का अपर नाम 'अर्थ' है जिसकी पाँच प्रकृतियाँ मानी गई हैं : बीज, बिन्दु, पताका, प्रकरी और कर्य। कार्यावस्था और अर्थप्रकृति के समानांतर संयोग से क्रमश: पाँच संधियाँ घटित होती हैं : मुख, प्रतिमुख, गर्भ, विमर्श और निर्वहण। रूपकों में अभिनीत वस्तु दृश्य एवं श्रव्य होती है; श्रव्य भी दो प्रकार की

कहीं गई हैं : नियत श्रव्य और सर्वश्रव्य। कथावस्तु के उस भाग को जो सामाजिक नीति के विरुद्ध हो, अश्लील या शास्त्रनिषद्ध हो, अथवा मुख्य कार्य का अनुपकारक हो, रंगमंच पर प्रदर्शित न करने का विधान हैं; परन्तु पूर्वापर संदर्भ से अवगत कराने के हेतु पूर्वोक्त प्रकार के जिस कथाभाग से प्रेक्षकवर्ग का परिचय होना अनिवार्य हो वह अंश कतिपय अमुख्य पात्रों के संवाद द्वारा उपस्थित किया जाता है। ऐसे संवाद को अर्थोपक्षेपक कहते हैं जिसके पाँच प्रकार हैं : विष्कम्भ, प्रवेशक, चूलिका, अंकमुख और अंकावतार।

रूपकों के पात्र विविध श्रेणी के होते हैं : दिव्य, अदिव्य एवं दिव्यादिव्य। प्रत्येक पात्र अपनी प्रकृति के अनुसार उत्तम, मध्यम अथवा अधम माना गया है। पात्रों के द्वारा प्रयुक्त बोली एवं परस्पर संभाषण के भी नियम हैं। उत्तम पात्र संस्कृत का प्रयोग करते हैं, शेष पात्र प्रायेण विविध प्राकृत अथवा देशी भाषाओं का। प्रत्येक पात्र को विशेषत: प्रधान पात्रों के व्यवहार को वृत्ति कहते हैं जो अंतरंग भावों की विभिन्न चेष्टाओं की सहचरी है। कैशिकी, सात्वती, आरभटी और भारती नामक चार वृत्तियाँ प्रमुख मानी गई हैं। दशरूपों के अभिनय में देश और काल के अनुरूप वेशभूषा, आमोद प्रमोद एवं अन्य नाटकीय उपकरणों के संबंध में प्रायोगिक नियम भी विविध पात्रों के सामाजिक स्तर के अनुरूप निर्दिष्ट हैं जिनका समावेश नाट्यशास्त्र में "प्रवृत्ति" के अंतर्गत किया गया है। साथ ही नृत्य, वाद्य एवं संगीत का सहयोग, प्राकृतिक पृष्ठभूमि, पशु पक्षी का साहचर्य रूपक के प्रसाधन माने गए हैं। रूपकों की रचना में गद्य एवं पद्य दोनों का प्रयोग किया जाता है अतएव दशरूपों की गणना काव्यभेद की दृष्टि से मिश्र काव्य में की जाती है। दशरूप का मुख्य उद्देश्य मनोरंजन होते हुए भी ये तात्कालिक सामाजिक स्थिति को प्रतिबिंवित करते हैं; साथ ही साथ मानव जीवन के सदादर्शों की ओर कांतासंमत संकेत भी करते हैं।

रूपक दस हैं जिनका उल्लेख निम्न है.

१ नाटक

भारतीय आचार्यों ने ' रूपक ' के भेदों में नाटक को सर्वप्रथम और सर्वोच्च स्थान दिया है।

योग , कर्म सारे शास्त्र , सारे शिल्प , और विविध कार्यों में कोई ऐसा नहीं है जो नाटक में न हो। अर्थात नाटक के कथावस्तु में सभी प्रकार के तत्व समाहित रहते है।

इस प्रकार के नाटक में मानव मात्र की सुख – दुख सभी परिस्थितियों का उद्घाटन किया जाता है। नाटक में विस्तृत कथावस्तु होता है , यद्यपि समय – समय पर अनेक रसों को जागृत करता है। लेकिन अंततः उसमें किसी एक रस का ही परिपूर्णता निष्पत्ति होती है।

आचार्य भरत ने नाटक के नायक को राजश्री होना जरूरी माना है। उनका आशय यह है कि नाटक का नायक कोई देवता नहीं वरन पुरुष होना चाहिए जो राजा होने के साथ-साथ ऋषि भी हो। भरत ने नाटक के नायक को देवता नहीं वरन मनुष्य होना चाहिए आवश्यक माना है , क्योंकि सामाजिक मनुष्य के साथ ही तादात्म्य स्थापित कर सकता है।

२. प्रकरण-

इसकी कथावस्तु कवि कल्पित होती है | तथा नायक धीर. प्रशांत. क्षत्री. ब्राह्मण या वणिक होता है | प्रकरण की कथावस्तु , नायक और साध्य तीनों ही आख्यात अथवा कल्पित होना चाहिए। प्रकरण की कथावस्तु अभिजात्य साहित्य व लोक साहित्य का भी हो सकता है। प्रकरण की कथावस्तु पूर्णतः काल्पनिक भी हो सकती है। अभिनव गुप्त का मानना है कि प्रकरण की कथावस्तु रामायण और महाभारत आदि ग्रंथों को छोड़कर अन्य काव्यों से ली जा सकती है। प्रकरण की कथावस्तु का अप्रसिद्ध होना प्रायः सभी आचार्यों ने आवश्यक माना है। कथावस्तु के अप्रसिद्ध होने के साथ-साथ नायक और साध्य भी अप्रसिद्ध हो जाते हैं। भरत का कहना है कि प्रकरण में राजवंश का व्यक्ति नहीं होना चाहिए। बल्कि ब्राह्मण , वणिक , अमात्य , सार्थवाह अथवा इसी कोटि का कोई व्यक्ति हो सकता है। भरत ने प्रकरण में विदूषक के होने का उल्लेख नहीं किया है।

३. भाण-

यह एक अंक का होता है! इसमें किसी धूर्त का वर्णन होता है | भरत ने ' प्रहसन ' की भांति ' भाण ' को भी हास्य व्यंग से पूर्ण नाटकीय रचना कहा है। यह वस्तुतः एक पात्रीय नाटक होता है। वह पात्र धूर्त अथवा विट होता है , और हमारे आगे स्वयं अपने अथवा किसी अन्य व्यक्ति के अनुभव का प्रदर्शन करता है। वह काव्यालियों के साथ अपने शारीरिक चेष्टाओं का भी प्रदर्शन करता है। आचार्यों का कहना है कि भाण की रचना सामान्य जनों , अभिजात वर्ग के व्यक्तियों तथा राज्य पुत्रों को भी धोखाधड़ी से बचाने हेतु की जाती है।

४. प्रहसन-

इसमें एक अंक होता है तथा हास्य रस प्रधान होता है! इसमें धर्म के नाम पर ढोंग करने वालों की अधिकता होती है | भरत ने रूपकों के अंतर्गत प्रहसन को भी स्थान दिया है। इसमें हास्य की प्रधानता होती है। भरत ने इसके दो प्रकार – १ शुद्ध और २ संकीर्ण गिनाए हैं। शुद्ध प्रहसन में ब्राह्मण , तापस , भागवत आदि अभिजात चरित्रों के बीच हास्य – परिहास दिखाया जाता है। संकीर्ण प्रहसन में – वेश्या , नपुंसक आदि लज्जा एवं संकोच का परित्याग कर विचित्र वेशभूषा और विलक्षण उपकरणों द्वारा हास्य उत्पन्न करने का दृश्य दिखाया जाता है।

भरत ने प्रहसन के अंको की संख्या के विषय में कुछ नहीं कहा है।

५. डिम-

इसके पात्र मानवेतर होते हैं! यह चार अंकों का होता है | रूपको में ईहामृग के बाद डीम का निरूपण किया गया है। धनंजय ने डीम की व्युत्पत्ति घात – प्रतिघात से मानी है। अभिनव गुप्त के अनुसार डीम , डिम्ब और विद्रव पर्यायवाची हैं। डिम्ब का अर्थ है दंगा – फसाद , भय से चित्रकार और विद्रव से अभिप्राय है युद्ध , प्राकृतिक प्रकोप , हिस्त्र पशुओं द्वारा किया गया उत्पाद आदि। विश्वनाथ ने इसी आधार पर डीम में मायावी क्रीडा , इंद्रजाल , संग्राम , क्रोध , उद्भ्रांत चेष्टाओं , का प्रदर्शन माना है। भरत ने भी डीम में माया एवं इंद्रजाल की प्रधानता स्वीकारा है , उन्होंने लिखा है कि – ' इसमें पात्र मुखोटे धारण कर परस्पर लड़ते दिखाया जाता है। इस संघर्ष में देव , नाग , यक्ष , पिशाच आदि अनेक जातियों के लोग भाग लेते हैं।

पात्रों की संख्या सोलह (16) बताई गई है। डीम की कथा प्रख्यात होती है। नायक भी लोक प्रसिद्ध होता है। वह प्रकृति से उदात होता है। संघर्ष का प्रधान होने के कारण डीम सामाजिकों के मन में श्रृंगार और हास्य को छोड़कर अन्य रसों की भावना जगाता है।

६. व्यायोग-

एक अंक वाले इस रूपक में किसी इतिहास प्रसिद्ध उद्धृत व्यक्ति के युद्ध का वर्णन होता है! युद्ध का कारण भूमि या नारी होती है | व्यायोग में समवकार की भांति अनेक पुरुष पात्रों का योग होता है। उनके बीच द्वंद्व , युद्ध , शस्त्र युद्ध , आकर्षण आदि दृष्टिगत होते हैं।

इस संघर्षमय आख्यान के कारण स्त्री पात्रों की संख्या कम होती है। सारा घटनाक्रम एक (1) दिन में सीमित रहता है। नायक प्रख्यात होता है , इसमें वीर रस और रूद्र रसों की अवधारणा की जाती है। धनंजय ने भी किसी स्त्री को लेकर नहीं वरन किसी अन्य प्रेरणा से युद्ध का होना स्वीकारा है। शारदातनय की भी यही धारणा है। उनके अनुसार नायक तीन -दस (3-10) तक हो सकते हैं। विश्वनाथ के अनुसार इसका नायक धीरोदात्त एवं दिव्य होता है।

७. समवकार –

यह तीन अंकों का होता है! इसके पात्र देव और दैत्य होते हैं | इस कोटि की रचना में देवासुरों का संग्राम की प्रसिद्ध कथा का किसी विशेष प्रयोजन से संयोजन किया जाता है। समवकार में तीन – तीन (3 – 3) प्रकार के कपट , विद्रव , श्रृंगार है। श्रृंगार के तीन प्रकार – धर्म , अर्थ और काम के आधार पर बताए हैं। समवकार के प्रत्येक अंक के बाद लगता है जैसे कि घटना क्रम समाप्त हो गया है। समवकार में धार्मिक श्रृंगार के अंतर्गत व्रत नियम आदि का विधान होता है। आर्थिक समवकार में अर्थ – लाभ की दृष्टि से किसी रूपसी के साथ आनंद कीड़ा का प्रदर्शन होता है। किसी कन्या के रूप – वैभव के प्रति अनुरक्त होकर जो आख्यान चलता है , उसे काम श्रृंगार की संज्ञा दी गई है। श्रृंगार रस के सभी रूपों में वीर अथवा रौद्र रस को प्रमुखता दी जाती है।

८. वीथी-

श्रृंगार रसयुक्त इस एकांकी में भाण के समान पात्र होता है | ' वीथी ' नाटक को एकांकी कहा गया है , तथा पात्रों की संख्या भी एक -दो (1-2) तक सीमित मानी गई है। यह पात्र किसी भी श्रेणी के हो सकते हैं। वीथी में प्रायः रसों का प्रदर्शन हो सकता है। समस्त रसों की अभिव्यंजना हेतु नायिका का होना भी स्वीकार किया गया है। शिंगभूपाल ने नायिका का सामान्य व परकीया होना आवश्यक माना है। भरत ने वीथी में लास्य की चर्चा की है लेकिन प्रयोग नहीं। भोज ने वीथी में लास्य के विभिन्न अंगों के प्रयोग को आवश्यक माना है। धनंजय ने वीथी को सर्वहारा कहा है लेकिन श्रीनगर रस प्रधान माना है।

९. अंक-

इसमें एक से लेकर तीन तक अंक होते हैं! इसमें करूण रस की प्रधानता रहती है | भरत के अनुसार ' उत्कृष्टकांक ' का अर्थ है – ऐसी स्त्रियां जिसमें सृष्टि का उत्क्रमण हो गया हो। उत्क्रमण से आशय अतिक्रमण , विचलन , महाप्रयाण आदि से है। इस नाटकीय विधान में उन स्त्रियों का प्रदर्शन होता है , जिनका संसार उलट-पुलट हो

गया हो। अभिनव गुप्त का कहना है कि इसमें उत्कृष्ट – प्राणा स्त्रियों को शोक-विह्ल एवं प्रलाप करते हुए दिखाया गया है। भारत के अनुसार उत्सृष्टिकांक की कथा प्रायः प्रख्यात और कभी-कभी आख्यात होती है। इसमें करुण भावना की संयोजना किसी दिव्य पुरुष को लेकर नहीं वरन सामान्य व्यक्ति को लेकर होती है। स्वर्ग में सर्वथा आनंद ही माना गया है। विषाद तो इस धरती पर ही देखने को मिलता है। इसलिए रोदन का प्रसंग इस धरती से ही उपस्थित किया जाता है।

१०. ईहामृग-

इसमें चार अंक होते हैं तथा इसका कथानक मिश्रित होता है! इसमें किसी दिव्य स्त्री के अपहरण की घटना होती है | समवकार के बाद ईहामृग पर विचार किया गया है। 'ईहा' का अर्थ है – इच्छा और 'मृग' शब्द का प्रयोग प्रारंभ में 'तृण' की खोज करने वाले पशु के रूप में हुआ था। कालांतर में मृग पशु के लिए प्रयोग होता है। ईहामृग में किसी दिव्य नायिका हेतु तलाश की दृष्टि से कथा सूत्र का विकास होता है। रामचंद्र और गुणचंद्र के अनुसार – नायक मृग की भांति किसी दुर्लभ रूप से को पाने के लिए प्रयत्नशील होता है , इसलिए इसे यह ईहामृग नाम दिया गया है। आचार्यों के अनुसार ईहामृग में किसी रूपसी की प्राप्ति के लिए संघर्ष होता है। नायक दिव्य होता है। कुल मिलाकर बारह (12) पात्र होते हैं , जो नायिका को प्राप्त करने के लिए संघर्ष करते हैं। नायिका स्वभाव से उग्र होती है , उसे पाने के लिए नायक व अन्य चरित्रों के बीच संघर्ष होता है। इसलिए नायिका का अपहरण भी होता है।

सन्दर्भ सूचि :

1. नाट्यशास्त्र- भरतमुनि, गायकवाड़ ऑरियन्टल सीरीज, बड़ौदा।
2. दशरूपकम्- डॉ0 श्रीनिवास शास्त्री, साहित्य भण्डार, सुभाष बाजार मेरठ-2,
3. https://www.hindivibhag.in
4. https://hi.wikipedia.org/
5. https://hi.unionpedia.org/